



मौलिक अधिकारों एवं मौलिक कर्तव्यों के प्रति जागरूकता और सामाजिक उत्थान में डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचारों एवं प्रयासों का योगदान।

कृष्णपाल

रिसर्च स्कालर (शिक्षा शास्त्र), शहीद मंगल पांडे राजकीय, महिला महाविद्यालय, मेरठ .

डॉ. मंजू रानी

प्रोफेसर शिक्षा विभाग, शहीद मंगल पांडे राजकीय, महिला महाविद्यालय, मेरठ.

सार :

प्रस्तुत शोध लेख भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पकार भारत रत्न डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर के सामाजिक, संवैधानिक और राजनीतिक दर्शन का गहन विश्लेषण है। इस शोध का केन्द्रीय विषय यह विवेचना करना है कि किस प्रकार से डॉ. अंबेडकर के विचारों और अथक प्रयासों ने भारतीय जनमानस में मौलिक अधिकारों और मौलिक कर्तव्यों के प्रति चेतना को जागृत किया तथा समाज के वंचित और शोषित वर्गों के सामाजिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त किया। डॉ. अंबेडकर का सम्पूर्ण जीवन



सामाजिक असमानता, जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता के विरुद्ध एक सतत संघर्ष की गाथा रहा है। उन्होंने स्वयं भेदभाव को महसूस किया था, इसलिए वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि केवल राजनीतिक स्वतंत्रता ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उनका मानना था कि सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना हो। उनके लिए संविधान केवल शासन चलाने का एक दस्तावेज नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति का एक साधन था। भारतीय संविधान के भाग 03 में वर्णित मौलिक अधिकार और भाग 04-क में वर्णित मौलिक कर्तव्य उनके इसी क्रांतिकारी चिंतन की उपज हैं। उन्होंने शिक्षा, संगठन और संघर्ष के त्रिसूत्रीय मंत्र के माध्यम से समाज को न केवल अपने अधिकारों के प्रति सजग किया, बल्कि राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों का बोध भी कराया। यह शोध पत्र द्वितीयक स्रोतों, संविधान सभा में की गई बहसों, डॉ. अंबेडकर द्वारा लिखित प्रमुख ग्रंथों जैसे एनिहिलेशन ऑफ कास्ट, हूवर द शूद्राज, द प्रॉब्लम ऑफ द रूपी और शूद्रों की खोज आदि के गुणात्मक विश्लेषण पर आधारित है। शोध के निष्कर्ष के रूप में यह स्थापित किया गया है कि डॉ. अंबेडकर द्वारा स्थापित संवैधानिक मूल्य और उनके द्वारा जगाई गई अधिकार चेतना आज 21वीं सदी के भारत में भी सामाजिक न्याय, समानता और समावेशी विकास की आधारशिला बनी हुई है।

मुख्य शब्द: मौलिक अधिकार, मौलिक कर्तव्य, सामाजिक उत्थान, संवैधानिक जागरूकता, समतामूलक समाज व आरक्षण।

प्रस्तावना :

डॉ. भीमराव अंबेडकर आधुनिक भारतीय इतिहास के उन विरले महापुरुषों में से एक हैं जिनका व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही बहुआयामी था। वे एक साथ एक विधिवेत्ता, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, शिक्षाविद और राजनेता थे। उनका जन्म 14 अप्रैल 1891 को महु छावनी में महार जाति में हुआ था, जिसे उस समय अस्पृश्य माना जाता था। बचपन में उन्हें जिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, जैसे स्कूल में अलग बैठना, पानी की समस्या, बैलगाड़ी में बैठने से रोका जाना आदि, इन सब घटनाओं ने उनके मन में व्यवस्था के प्रति गहरा आक्रोश नहीं, बल्कि उसे वैज्ञानिक तरीके से बदलने की इच्छा पैदा की। उन्होंने बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ की छात्रवृत्ति से कोलंबिया विश्वविद्यालय, अमेरिका और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से उच्च शिक्षा प्राप्त की और दुनिया के सबसे शिक्षित व्यक्तियों में से एक बने। पश्चिमी देशों में समानता और स्वतंत्रता को देखकर उन्हें यह एहसास और भी गहरा हुआ कि भारत में लोकतंत्र तब तक अधूरा है जब तक सामाजिक लोकतंत्र और ज्यादा मजबूती के साथ स्थापित नहीं होता। डॉ. अंबेडकर का मानना था कि भारत में लोकतंत्र का एक बड़ा शत्रु जाति प्रथा भी है। जाति प्रथा ने समाज को हजारों टुकड़ों में बांट दिया है और यह समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के सिद्धांतों के विरुद्ध है। इसलिए उन्होंने अपने जीवन के दो मुख्य लक्ष्य निर्धारित किए। पहला, यह कि दलितों और शोषितों को उनके मानवीय अधिकार दिलाना और दूसरा, भारतीय समाज का समतामूलक पुनर्निर्माण करना। इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उन्होंने दो मार्ग अपनाए। पहला मार्ग था प्रत्यक्ष आंदोलन का। उन्होंने 1927 में महाड़ सत्याग्रह का नेतृत्व किया जहां दलितों ने चवदार तालाब से पानी पीकर यह सिद्ध किया कि सार्वजनिक संसाधनों पर सभी का समान अधिकार है। इसी प्रकार 1930 में नासिक के कालाराम मंदिर में प्रवेश के लिए सत्याग्रह किया। दूसरा और अधिक स्थायी मार्ग था संवैधानिक मार्ग। वे समझते थे कि आंदोलन से एक तालाब या एक मंदिर का द्वार खुल सकता है, लेकिन पूरे देश की व्यवस्था को बदलने के लिए कानून की शक्ति आवश्यक है। 1947 में जब उन्हें संविधान सभा की प्रारूप समिति का अध्यक्ष बनाया गया, तो उन्हें अपने जीवन भर के चिंतन को संविधान में उतारने का ऐतिहासिक अवसर प्राप्त हुआ।

मौलिक अधिकारों की संकल्पना और डॉ. अंबेडकर की भूमिका :

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का प्रावधान डॉ. अंबेडकर के अथक प्रयासों का ही परिणाम माना जाता है। संविधान सभा में इस विषय पर एक लंबी बहस हुई थी कि मौलिक अधिकार कैसे होने चाहिए। कुछ सदस्यों का मानना था कि अधिकार असीमित होने चाहिए, जबकि डॉ. अंबेडकर का दृष्टिकोण अधिक व्यावहारिक था। उन्होंने कहा कि अधिकार असीमित नहीं हो सकते, लेकिन राज्य द्वारा उनका हनन भी नहीं किया जा सकता। उन्होंने मौलिक अधिकारों को दोहरी सुरक्षा प्रदान की। एक तरफ उन्होंने राज्य को यह निर्देश दिया कि वह ऐसा कोई कानून नहीं बनाएगा जो मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता हो और दूसरी तरफ उन्होंने नागरिकों को अनुच्छेद 32 के तहत सीधे सर्वोच्च न्यायालय तक जाने का अधिकार दिया। शोधार्थी ने पाया है कि यदि हम मौलिक अधिकारों का विस्तार से अध्ययन करें तो हमें डॉ. अंबेडकर के विचारों की स्पष्ट छाप दिखती है। अनुच्छेद 14 से 18 तक समानता के अधिकार की बात है। अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष समानता की बात करता है, अनुच्छेद 15 धर्म, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव को रोकता है। लेकिन इसमें सबसे क्रांतिकारी अनुच्छेद 17 है जो अस्पृश्यता का अंत करता है। यह अनुच्छेद डॉ. अंबेडकर के जीवन भर के संघर्ष का सार है। उन्होंने संविधान सभा में कहा था कि अस्पृश्यता केवल एक सामाजिक बुराई नहीं हो सकती, बल्कि मानवता के खिलाफ अपराध है। इसी प्रकार अनुच्छेद 15(4) और 16(4) में उन्होंने सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष उपबंध की व्यवस्था करवाई। यही वह

संवैधानिक आधार है जिस पर भारत में आरक्षण की पूर्ण व्यवस्था टिकी हुई है। इस आरक्षण ने करोड़ों लोगों के जीवन को बदला है और उन्हें शिक्षा और सरकारी सेवाओं में प्रतिनिधित्व देकर मुख्यधारा में शामिल किया है।

इसी प्रकार स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार और धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार भी उनके समतामूलक दर्शन को दर्शाते हैं। अनुच्छेद 23 और 24 में मानव तस्करी और बेगार प्रथा पर रोक लगाई गई है, जो सीधे तौर पर गरीब और दलित वर्ग के शोषण को रोकने के लिए थी। लेकिन इन सभी में सबसे महत्वपूर्ण है अनुच्छेद 32, जिसे डॉ. अंबेडकर ने स्वयं संविधान की आत्मा और हृदय कहा था। उनका तर्क था कि यदि नागरिकों को अपने अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय जाने का ही अधिकार नहीं होगा, तो संविधान में अधिकार लिखने का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। आज भारत में जनहित याचिकाओं का जो विशाल स्वरूप हम देखते हैं, जहां एक आम आदमी भी पर्यावरण, भ्रष्टाचार या मानवाधिकारों के मुद्दे पर सुप्रीम कोर्ट जा सकता है, वह अनुच्छेद 32 की ही देन है। इस अनुच्छेद ने भारत के आम नागरिक में यह विश्वास पैदा किया है कि वह कानून के सामने बराबर है और वह बड़े से बड़े व्यक्ति या सरकार के विरुद्ध न्याय मांग सकता है। इसी विश्वास ने समाज में कानूनी जागरूकता की लहर पैदा की है।

मौलिक कर्तव्यों का वैचारिक आधार और सामाजिक उत्थान में उसकी भूमिका :

मौलिक कर्तव्यों को भारतीय संविधान में 1976 में 42वें संविधान संशोधन के द्वारा जोड़ा गया था। स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिश पर दस मौलिक कर्तव्यों को अनुच्छेद 51 में शामिल किया गया। सतही तौर पर देखने पर लगता है कि इसका डॉ. अंबेडकर से कोई सीधा संबंध नहीं है, क्योंकि उनका देहांत 1956 में ही हो चुका था। लेकिन यदि हम वैचारिक स्तर पर विश्लेषण करें तो पाते हैं कि मौलिक कर्तव्यों का सम्पूर्ण दर्शन डॉ. अंबेडकर के लेखन में पहले से ही मौजूद था। डॉ. अंबेडकर अधिकार और कर्तव्य को अलग-अलग नहीं देखते थे। उनका मानना था कि एक व्यक्ति का अधिकार दूसरे व्यक्ति का कर्तव्य है। यदि मुझे समानता का अधिकार है, तो समाज के हर व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह मेरे साथ समानता का व्यवहार करे। मौलिक कर्तव्यों में सबसे पहला कर्तव्य है संविधान का पालन करना और उसके आदर्शों का सम्मान करना। डॉ. अंबेडकर ने संविधान सभा के अंतिम भाषण में कहा था कि संविधान कितना भी अच्छा क्यों न हो, यदि उसे चलाने वाले लोग बुरे होंगे तो वह बुरा साबित होगा। इसलिए संविधान के प्रति निष्ठा का भाव उन्होंने लोगों में हमेशा जगाया। दूसरा महत्वपूर्ण कर्तव्य है बंधुत्व को बढ़ावा देना। डॉ. अंबेडकर की प्रसिद्ध पुस्तक एनिहिलेशन ऑफ कास्ट का अंतिम संदेश ही बंधुत्व की स्थापना है। वे कहते थे कि भारत में भाईचारे की भावना का अभाव है क्योंकि जाति प्रथा लोगों को बांटती है। जब तक हम सब खुद को भारतीय नहीं समझेंगे, तब तक राष्ट्र मजबूत नहीं होगा। यही बात आज मौलिक कर्तव्य के रूप में हमारे सामने है। तीसरा कर्तव्य है वैज्ञानिक दृष्टिकोण और ज्ञानार्जन की भावना का विकास। डॉ. अंबेडकर स्वयं वैज्ञानिक सोच के सबसे बड़े समर्थक थे। वे अंधविश्वास, पाखंड और कर्मकांड के घोर विरोधी थे। उन्होंने कहा था कि शिक्षा वह शेरनी का दूध है जो पिएगा वही दहाड़ेगा। उनका यह जोर शिक्षा पर था, वही आज वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कर्तव्य के रूप में संविधान में है।

सामाजिक उत्थान के क्षेत्र में डॉ. अंबेडकर का योगदान केवल कानूनी प्रावधानों तक सीमित नहीं रहा है। उन्होंने सामाजिक उत्थान के लिए तीन सूत्र दिए थे - शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो। शिक्षित बनने से उनका तात्पर्य केवल डिग्री लेने से नहीं, बल्कि तर्कशील और जागरूक बनने से था। उन्होंने 1945 में पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी की स्थापना की और सिद्धार्थ कॉलेज, मिलिंद कॉलेज जैसे संस्थानों की नींव रखी ताकि गरीब से गरीब बच्चा भी उच्च शिक्षा को प्राप्त कर सके। संगठित रहने से उनका अर्थ था जाति और धर्म से ऊपर उठकर एक वर्ग के रूप में संगठित होना। उन्होंने ऑल इंडिया शेड्यूल्ड

कास्ट फेडरेशन की स्थापना इसी उद्देश्य से की थी। और उनके लिये संघर्ष का अर्थ था अपने अधिकारों के लिए संवैधानिक तरीके से लड़ना। उनके इन प्रयासों ने दलित समाज में आत्म-सम्मान और आत्मविश्वास की भावना पैदा की। लोगों ने अपने आप को अछूत मानने से इनकार कर दिया और बराबरी की मांग करने लगे। यही सामाजिक उत्थान की सबसे बड़ी क्रांति थी - मानसिक गुलामी से मुक्ति। इसके अलावा हिंदू कोड बिल के माध्यम से उन्होंने महिलाओं को संपत्ति में अधिकार, तलाक का अधिकार और गोद लेने का अधिकार दिलाने का जो प्रयास किया, वह भी सामाजिक उत्थान का एक अभिन्न हिस्सा था। वे मानते थे कि जब तक महिलाएं सशक्त नहीं होंगी, तब तक समाज का उत्थान संभव नहीं है।

निष्कर्ष :

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि डॉ. भीमराव अंबेडकर केवल एक संविधान निर्माता नहीं थे, बल्कि वे एक युगद्रष्टा और सामाजिक क्रांति के अग्रदूत थे। उन्होंने भारतीय समाज को यह सिखाया कि अधिकार दया से नहीं, बल्कि संघर्ष और संवैधानिक गारंटी से प्राप्त होते हैं। मौलिक अधिकारों के माध्यम से उन्होंने भारत के प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह कितना भी गरीब या वंचित क्यों न हो, यह विश्वास दिलाया कि वह इस देश का समान नागरिक है और उसकी गरिमा की रक्षा करना राज्य का कर्तव्य है। वहीं मौलिक कर्तव्यों के वैचारिक आधार को स्थापित करके उन्होंने यह भी सिखाया कि अधिकारों के साथ-साथ राष्ट्र के प्रति जिम्मेदारियां भी होती हैं। उनके द्वारा जगाई गई संवैधानिक जागरूकता का ही परिणाम है कि आज भारत का आम आदमी अपने अधिकारों के लिए पुलिस स्टेशन से लेकर सुप्रीम कोर्ट तक का दरवाजा खटखटाता है। उनका दिया हुआ आरक्षण का सिद्धांत आज सामाजिक न्याय का सबसे बड़ा हथियार बना हुआ है। अंत में कहा जा सकता है कि डॉ. अंबेडकर का योगदान किसी एक समय या एक वर्ग तक सीमित नहीं है, बल्कि वह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। जब तक भारत में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के लिए संघर्ष जारी रहेगा, तब तक डॉ. अंबेडकर के विचार प्रासंगिक बने रहेंगे और भारतीय समाज को उसके मौलिक अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक करते रहेंगे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बिहारी एल.आर. तथा कृष्णकान्त (2013-2014), “भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ”, आर.लाल बुक डिपो मेरठ।
2. पाठक, पी. डी. (2006-07), “ भारतीय शिक्षा और समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
3. पाण्डेय रामशकल (2006-07), “उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक”, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. करीम शबाना, “डॉ. भीमराव अंबेडकर व्यक्तित्व एवम् विचार”, आर पी पब्लिकेशन, मेरठ। आई एस बी एन 988177893604
5. पुजारी, विजय कुमार, (2022) “डॉ. अंबेडकर जीवन और दर्शन”, सम्यक प्रकाशन, पश्चिम पुरी नई दिल्ली। आई एस बी एन 9789395446471
6. अम्बेडकर, बी. आर. - एनिहिलेशन ऑफ कास्ट, 1936
7. अम्बेडकर, बी. आर. - हू वर द शूद्राज, 1946
8. भारत का संविधान, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार
9. संविधान सभा वाद-विवाद, खंड 7 और खंड 11

-
10. कीर, धनंजय - डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जीवनी चरित्र, पॉपुलर प्रकाशन
 11. बसु, डी. डी. - इंट्रोडक्शन टू द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ इंडिया
 12. थोराट, सुखदेव - अम्बेडकर इन रेट्रोस्पेक्ट